www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

**Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal**

**(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)**

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-4* *April 2025***

# भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रीय दलों की भूमिकाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

*संजय कुमार*

*+2 शिक्षक (प्रभारी प्रधानाध्यापक), जी एन एस बी, +2 स्कूल मोहनपुर, धरहरा, मुंगेर, बिहार*

**सारांश**

भारतीय लोकतंत्र एक विविधतापूर्ण और बहुपक्षीय प्रणाली है, जिसमें क्षेत्रीय दलों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में प्रारंभिक दशकों तक राष्ट्रीय दलों का प्रभुत्व रहा, विशेषकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का। किंतु 1967 के आम चुनावों के बाद क्षेत्रीय दलों का उदय तेजी से हुआ और उन्होंने विभिन्न राज्यों में सशक्त राजनीतिक शक्ति के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। क्षेत्रीय दल न केवल क्षेत्र विशेष की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आकांक्षाओं के प्रतिनिधि बनकर उभरे हैं, बल्कि उन्होंने केंद्र की राजनीति में भी निर्णायक भूमिका निभाई है। जैसे–जैसे गठबंधन सरकारों का युग आया, क्षेत्रीय दलों की प्रभावशीलता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। यूपीए और एनडीए जैसे गठबंधनों में इन दलों की भागीदारी ने राष्ट्रीय नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन को नई दिशा दी। इन दलों ने सामाजिक न्याय, पिछड़े वर्गों की राजनीति, और क्षेत्रीय अस्मिता को मुख्यधारा में लाने का कार्य किया है। दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक तथा महिला सशक्तिकरण जैसे विषयों को उन्होंने अपने एजेंडे में शामिल कर लोकतंत्र की समावेशी प्रकृति को बल प्रदान किया है। इसके साथ ही, क्षेत्रीय दलों ने प्रशासनिक विकेंद्रीकरण और संघीय ढांचे को मजबूत करने में भी सहयोग दिया है। हालांकि, इन दलों पर कई आलोचनाएँ भी की जाती हैं, जैसेकृपरिवारवाद, भ्रष्टाचार, जातिवादी राजनीति, और अवसरवादिता। साथ ही, इनकी अत्यधिक क्षेत्रीयता कभी–कभी राष्ट्रीय एकता और नीति–निर्माण में बाधा भी उत्पन्न करती है। वर्तमान में केंद्र में सशक्त बहुमत वाली सरकार होने के बावजूद कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों की पकड़ बनी हुई है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकतंत्र में इनकी भूमिका स्थायी और आवश्यक है। इस अध्ययन के माध्यम से यह निष्कर्ष निकलता है कि क्षेत्रीय दल भारतीय लोकतंत्र के संघीय ढांचे का एक अनिवार्य घटक हैं। यदि इनकी कार्यप्रणाली को अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी और लोकतांत्रिक बनाया जाए, तो ये भारतीय लोकतंत्र को और भी समृद्ध बना सकते हैं।

**मुख्य–शब्द**– भारतीय लोकतंत्र, क्षेत्रीय दल, सामाजिक न्याय, गठबंधन सरकार, संघवाद, राजनीतिक विविधता, जाति राजनीति, क्षेत्रीय।

## प्रस्तावना

भारत का लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जो सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के सिद्धांत पर आधारित है। भारतीय संविधान ने देश को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया है, जिसमें सरकार की स्थापना जनता द्वारा, जनता के लिए और जनता के माध्यम से होती है। भारतीय लोकतंत्र का ढांचा संसद प्रणाली पर आधारित है, जिसमें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों स्वतंत्र लेकिन एक–दूसरे के पूरक हैं। भारत में लोकतंत्र न केवल चुनावों की नियमितता तक सीमित है, बल्कि यह सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विविधताओं को सम्मान देने वाली प्रणाली है। यह व्यवस्था एक संघीय ढांचे के अंतर्गत कार्य करती है, जिसमें केंद्र और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन स्पष्ट है। इस ढांचे

में क्षेत्रीय विविधताओं और विशेषताओं का सम्मान किया जाता है, जिससे राज्यों को अपनी क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार नीतियाँ बनाने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। यही संघीय विशेषता भारत में क्षेत्रीय दलों की प्रासंगिकता को जन्म देती है। भारत में क्षेत्रीय दलों की उत्पत्ति का इतिहास स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों से जुड़ा हुआ है। प्रारंभ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक सर्वव्यापी राजनीतिक शक्ति थी, किंतु धीरे–धीरे इसकी राजनीतिक पकड़ ढीली पड़ने लगी और विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक आकांक्षाओं ने अलग राजनीतिक स्वरुप ग्रहण करना शुरू किया।

1967 के आम चुनावों को इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है। इस वर्ष कांग्रेस पार्टी को कई राज्यों में पराजय का सामना करना पड़ा और गैर–कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हुई। इस कालखंड में क्षेत्रीय नेतृत्व उभरकर सामने आया, जो राष्ट्रीय दलों की उपेक्षा का शिकार हुए समूहों की प्रतिनिधि शक्ति बना। दक्षिण भारत में द्रविड़ आंदोलन से जुड़े दलों (जैसे डीएमके), पंजाब में अकाली दल, असम में असम गण परिषद, और उत्तर भारत में समाजवादी आंदोलन से जुड़े दलों ने अपनी सामाजिक–राजनीतिक जड़ें मजबूत कीं। इन दलों ने न केवल अपनी–अपनी क्षेत्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने का प्रयास किया, बल्कि उन्होंने केंद्र सरकार की नीतियों के विरुद्ध क्षेत्रीय हितों की आवाज़ को बुलंद किया। धीरे–धीरे इन दलों की ताकत इतनी बढ़ी कि 1989 के बाद भारत में गठबंधन राजनीति का दौर प्रारंभ हुआ, जहाँ बिना क्षेत्रीय दलों के समर्थन के केंद्र सरकारों का गठन असंभव हो गया। इस स्थिति ने इन दलों को नीतिगत स्तर पर निर्णायक शक्ति प्रदान की।

वर्तमान शोध का उद्देश्य भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करना है। क्षेत्रीय दलों के उदय, उनके कार्यकलापों, नीतिगत प्रभाव, सामाजिक प्रतिनिधित्व तथा लोकतंत्र पर उनके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन इस शोध का मुख्य केंद्र है। इस विषय की प्रासंगिकता इसलिए भी विशेष है क्योंकि आज के समय में केंद्र और राज्यों के बीच संबंधों, क्षेत्रीय असंतोष, राजनीतिक विविधता तथा जातीय, भाषाई और सांस्कृतिक पहचान की राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और प्रभाव को समझे बिना भारतीय लोकतंत्र की संपूर्ण व्याख्या संभव नहीं है।

## भारतीय राजनीतिक व्यवस्था और क्षेत्रीय दलों का उद्भव

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीति में राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभुत्व स्पष्ट रूप से स्थापित था। संविधान निर्माण के साथ भारत ने संघीय व्यवस्था को अंगीकार किया, जिससे विभिन्न राज्यों को उनकी क्षेत्रीय विशेषताओं के अनुसार अधिकार और शासन संरचना प्राप्त हुई। इस संघीय ढांचे की विशेषता यह थी कि यह विविधता में एकता को संरक्षित रखते हुए क्षेत्रीय आकांक्षाओं के लिए भी पर्याप्त स्थान प्रदान करता था। भारत एक बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुधार्मिक राष्ट्र है, जहाँ हर क्षेत्र की अपनी सांस्कृतिक, भाषाई और ऐतिहासिक पहचान है। प्रारंभिक दशकों में राष्ट्रीय दलों ने देशव्यापी एकता के नाम पर इन क्षेत्रीय पहचान को गौण करने का प्रयास किया, जिससे कई क्षेत्रों में असंतोष पनपने लगा। दक्षिण भारत में हिंदी थोपे जाने के विरोध में उठी आवाज़, पंजाब में धार्मिक और भाषाई पहचान की मांग, उत्तर–पूर्व भारत में अलगाववाद की प्रवृत्तियाँ, और असम में बाहरी प्रवासियों के विरुद्ध आंदोलनकृये सभी घटनाएँ क्षेत्रीय अस्मिता के उभार के प्रमाण हैं। इन क्षेत्रीय असंतोषों और सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों ने ही कई राज्यों में ऐसे दलों की नींव रखी जो विशुद्ध रूप से क्षेत्र विशेष की समस्याओं और आकांक्षाओं पर केंद्रित थे। इस प्रक्रिया ने राष्ट्रीय राजनीति में विविधता और बहुलतावाद को स्थान दिलाया।

1967 का आम चुनाव भारतीय राजनीति के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। इस वर्ष कांग्रेस पार्टी पहली बार कई राज्यों में पराजित हुई और 9 राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारें गठित हुईं। इसे 'राजनीतिक विकेन्द्रीकरण' का प्रारंभिक चरण माना जाता है। इस अवधि में हरियाणा में जननायक चौधरी देवी लाल, तमिलनाडु में सी.एन. अन्नादुरई की डीएमके, बंगाल में वाम मोर्चा और बिहार में संयुक्त विधायक दल जैसे प्रयोग सामने आए। इस दौर की विशेषता यह रही कि राज्य स्तरीय नेतृत्व पहली बार केंद्र की सत्ता को चुनौती देने की स्थिति में आया। इन नेताओं ने न केवल स्थानीय मुद्दों को उठाया, बल्कि क्षेत्रीय जनता की सांस्कृतिक पहचान, भाषा और आर्थिक स्वायत्तता को भी प्राथमिकता दी। यह वही कालखंड था जब राष्ट्रीय राजनीति में गठबंधन की अवधारणा प्रारंभ हुई और राष्ट्रीय दलों को यह समझ में आया कि बिना क्षेत्रीय शक्तियों के समर्थन के सत्ता हासिल करना कठिन है।

क्षेत्रीय दलों की विचारधारा मूलतः उनकी सामाजिक–राजनीतिक पृष्ठभूमि और क्षेत्रीय परिस्थितियों पर आधारित होती है। तमिलनाडु की डीएमके और एआईएडीएमके द्रविड़ आंदोलन से उपजे, जो ब्राह्मणवाद और उत्तर भारतीय प्रभुत्व के विरुद्ध थे। उत्तर प्रदेश और बिहार की समाजवादी पार्टियाँ पिछड़े वर्गों की सामाजिक न्याय की राजनीति से प्रेरित रहीं। पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस का उदय वामपंथी शासन के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। भौगोलिक दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक क्षेत्रीय दल अपने राज्य विशेष में गहरी जड़ें रखता है और वहीं उसकी प्राथमिक राजनीति केंद्रित होती है। उदाहरण के लिए, शिवसेना की राजनीति मराठी अस्मिता पर आधारित है और उसका कार्यक्षेत्र मुख्यतः महाराष्ट्र है। अकाली दल पंजाब में सिखों के धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करता रहा है। तेलंगाना राष्ट्र समिति ने एक स्वतंत्र राज्य की मांग को लेकर आंदोलन चलाया और राज्य बनने के बाद प्रमुख सत्ता दल के रूप में उभरी। इन दलों की विचारधारा अक्सर जातिगत समीकरणों, भाषाई पहचानों और आर्थिक अधिकारों के चारों ओर घूमती है। यही कारण है कि इनकी राजनीति आमतौर पर भावनात्मक अपील और स्थानीय मुद्दों पर केंद्रित रहती है, जो राष्ट्रीय दलों की व्यापक नीति–निर्माण प्रक्रिया से भिन्न होती है।

## मुख्य क्षेत्रीय दलों की भूमिका और प्रभाव

`भारतीय लोकतंत्र की बहुलतावादी प्रकृति ने क्षेत्रीय दलों को विशेष रूप से फलने–फूलने का अवसर प्रदान किया है। भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भाषाई, सांस्कृतिक, जातिगत एवं आर्थिक विविधताएँ विद्यमान हैं, और इन विविधताओं ने ही क्षेत्रीय दलों के गठन एवं विकास की पृष्ठभूमि तैयार की है। इन दलों ने न केवल क्षेत्र विशेष की आकांक्षाओं को आवाज़ दी है, बल्कि कई बार राष्ट्रीय राजनीति में भी निर्णायक भूमिका निभाई है। दक्षिण भारत में क्षेत्रीय दलों की राजनीति सशक्त और स्थायी रही है। तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कषगम (डीएमके) और अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कषगम (एआईएडीएमके) ने राज्य की राजनीति में लंबे समय तक वर्चस्व बनाए रखा है। डीएमके का उद्भव द्रविड़ आंदोलन से हुआ, जिसने ब्राह्मणवादी प्रभुत्व के विरुद्ध सामाजिक न्याय, तमिल अस्मिता और भाषा के अधिकार की राजनीति को आगे बढ़ाया। एआईएडीएमके, डीएमके से अलग होकर, एम.जी. रामचंद्रन और जयललिता के नेतृत्व में लोकप्रिय जनाधार बनाकर सत्ता में आई। इन दोनों दलों ने केंद्र की नीतियों को चुनौती देने और राज्य की सांस्कृतिक स्वतंत्रता को संरक्षित करने का कार्य किया। तेलंगाना राष्ट्र समिति (टीआरएस), जो अब भारत राष्ट्र समिति (बीआरएस) बन गई है, तेलंगाना राज्य के निर्माण आंदोलन का नेतृत्वकर्ता रहा है। इस दल ने क्षेत्रीय असमानता, विकास की उपेक्षा और रोजगार के मुद्दों को लेकर राज्य गठन तक एक लंबी लड़ाई लड़ी। राज्य के गठन के पश्चात टीआरएस ने विकास, सिंचाई परियोजनाओं और सामाजिक कल्याण योजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया है।

उत्तर भारत में क्षेत्रीय दलों की राजनीति मुख्यतः जाति आधारित सामाजिक न्याय की अवधारणाओं पर केंद्रित रही है। समाजवादी पार्टी (सपा) ने मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में पिछड़े वर्गों के अधिकार और मंडल आयोग की सिफारिशों को केंद्र में रखकर राजनीति की। यह दल उत्तर प्रदेश में प्रभावशाली बना रहा और केंद्र की राजनीति में भी गठबंधन सरकारों का हिस्सा रहा। बहुजन समाज पार्टी (बसपा) ने कांशीराम और मायावती के नेतृत्व में दलितों को राजनीतिक चेतना दी और 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के सिद्धांत पर आधारित सत्ता में हिस्सेदारी सुनिश्चित की। बिहार में राष्ट्रीय जनता दल (राजद) और जनता दल यूनाइटेड (जदयू) जैसे दलों ने सामाजिक न्याय, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों की राजनीति को बढ़ावा दिया। लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में राजद ने सामाजिक समीकरणों को चुनौती देते हुए लोकतांत्रिक सहभागिता का नया प्रारूप प्रस्तुत किया, जबकि नीतीश कुमार के नेतृत्व वाली जदयू ने विकास एवं सुशासन को सामाजिक न्याय के साथ संतुलित करने का प्रयास किया।

पूर्व भारत की राजनीति में तृणमूल कांग्रेस (टीएमसी) ने वामपंथी शासन को चुनौती देकर एक नई राजनीतिक धारा प्रस्तुत की। ममता बनर्जी के नेतृत्व में टीएमसी ने बंगाली अस्मिता, अल्पसंख्यक अधिकारों और लोकहितकारी योजनाओं के बल पर राज्य में सशक्त शासन स्थापित किया। केंद्र सरकार की नीतियों के खिलाफ सशक्त विपक्षी भूमिका निभाते हुए इस दल ने राष्ट्रीय राजनीति में भी प्रभाव डाला है। असम गण परिषद का उद्भव असम आंदोलन की पृष्ठभूमि में हुआ, जो अवैध प्रवासियों के विरोध और असमिया पहचान के संरक्षण के उद्देश्य से चला। इस दल ने असम समझौते के बाद राज्य की सत्ता संभाली और भाषा, संस्कृति तथा स्थानीय संसाधनों की रक्षा के मुद्दे पर सक्रिय राजनीति की।

पश्चिम भारत में शिवसेना एक प्रमुख क्षेत्रीय दल रहा है, जिसकी स्थापना बाल ठाकरे ने की थी। यह दल 'मराठी मानुष' की पहचान और मुंबई में स्थानीय लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए उभरा। हालांकि बाद में इसने हिंदुत्व आधारित राष्ट्रवादी राजनीति को भी अंगीकार किया। हाल के वर्षों में शिवसेना में विभाजन हुआ है और इसका एक गुट भाजपा विरोधी खेमे में चला गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय दल भी समयानुसार अपनी वैचारिक दिशा बदलते हैं। राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (एनसीपी) की स्थापना शरद पवार ने कांग्रेस से अलग होकर की। यह दल महाराष्ट्र की राजनीति में किसान, ग्रामीण और अल्पसंख्यक समुदायों के मुद्दों पर केंद्रित रहा है। एनसीपी ने कई बार राज्य और केंद्र की गठबंधन सरकारों में भूमिका निभाई है और सत्तारूढ़ दलों को संतुलन प्रदान करने वाला सहयोगी भी सिद्ध हुआ है।

## क्षेत्रीय दलों का राष्ट्रीय राजनीति में योगदान

भारत का लोकतंत्र एक ऐसा मंच है, जहाँ विविध विचारधाराएँ, भाषाएँ, क्षेत्रीयताएँ और सामाजिक संरचनाएँ एक साथ सह–अस्तित्व में रहती हैं। इस बहुलता का राजनीतिक प्रतिबिंब क्षेत्रीय दलों के रूप में उभर कर सामने आया है, जिन्होंने न केवल राज्यों में अपनी सत्ता को सुदृढ़ किया है, बल्कि राष्ट्रीय राजनीति में भी निर्णायक भूमिका निभाई है। विशेष रूप से गठबंधन युग के आगमन के बाद, क्षेत्रीय दलों की भूमिका केवल सहायक नहीं रही, बल्कि केंद्रीय नीति निर्माण और सत्ता संरचना में महत्वपूर्ण भागीदार बन गई है। 1990 के दशक के पूर्वार्ध में भारतीय राजनीति में वह दौर प्रारंभ हुआ, जिसे श्गठबंधन युगश कहा जाता है। 1989 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी की हार और जनता दल की अगुवाई में सरकार बनने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि अब एकल बहुमत की सरकारों का युग समाप्त हो रहा है। इसी परिस्थिति ने क्षेत्रीय दलों को राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश का अवसर प्रदान किया। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) जैसे गठबंधनों में अनेक क्षेत्रीय दलों ने केंद्रीय सत्ता में साझेदारी की। एनडीए में शिवसेना, अकाली दल, टीडीपी, जदयू जैसे दलों की भागीदारी रही, जबकि यूपीए में डीएमके, एनसीपी, तृणमूल कांग्रेस, आरजेडी जैसे दल शामिल रहे। इन गठबंधनों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका केवल संख्या बल तक सीमित नहीं रही, बल्कि वे नीति निर्माण, मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व, और कार्यक्रमों के निर्धारण में निर्णायक शक्ति के रूप में उभरे।

गठबंधन सरकारों में क्षेत्रीय दलों ने केंद्र की नीतियों को प्रभावित करने के लिए अपनी स्थितियों का रणनीतिक उपयोग किया। कई अवसरों पर ये दल विशिष्ट क्षेत्रीय मुद्दों को राष्ट्रीय नीति के एजेंडे में सम्मिलित करवाने में सफल रहे हैं। जैसे कि डीएमके ने तमिलनाडु से जुड़े तमिल मुद्दों को संयुक्त राष्ट्र स्तर पर उठवाने का दबाव बनाया, वहीं तृणमूल कांग्रेस ने भूमि अधिग्रहण और खुदरा व्यापार में एफडीआई जैसे विषयों पर यूपीए सरकार की नीतियों को चुनौती दी। इसी प्रकार, जदयू ने विशेष राज्य का दर्जा पाने के लिए बिहार के पक्ष में बार–बार दबाव बनाया और शिवसेना ने महाराष्ट्र से संबंधित मराठी अस्मिता एवं किसान मुद्दों को केंद्र सरकार के समक्ष प्रबलता से रखा। यह दबाव राजनीति लोकतंत्र की वह प्रक्रिया है, जिसमें क्षेत्रीय हितों को राष्ट्रीय नीतियों में समाविष्ट करने का अवसर मिलता है, यद्यपि यह प्रक्रिया कभी–कभी गठबंधन सरकार की स्थिरता को संकट में भी डाल देती है। संसद, लोकतंत्र की वह सर्वोच्च संस्था है जहाँ राष्ट्रीय नीतियों पर विमर्श, समीक्षा और विधान निर्मित होता है। क्षेत्रीय दलों ने संसद में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाई है और महत्वपूर्ण विधेयकों पर प्रभाव डाला है। लोकसभा और राज्यसभा दोनों सदनों में इन दलों की उपस्थिति ने न केवल बहस को व्यापक बनाया है, बल्कि कई बार विधेयकों की दिशा और स्वरूप को भी बदला है। उदाहरण के लिए, भूमि अधिग्रहण विधेयक, महिला आरक्षण विधेयक, वस्तु एवं सेवा कर जैसे विधेयकों पर क्षेत्रीय दलों की राय निर्णायक रही है। संसद में क्षेत्रीय दलों ने विभिन्न संसदीय समितियों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे विधायी प्रक्रिया में विविध दृष्टिकोणों का समावेश हुआ है।

## क्षेत्रीय दलों से संबंधित चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रीय दलों ने जहाँ एक ओर प्रतिनिधित्व की व्यापकता, सामाजिक न्याय, और क्षेत्रीय अस्मिता को सशक्त किया है, वहीं दूसरी ओर कई गंभीर चुनौतियाँ और आलोचनाएँ भी इनसे जुड़ी रही हैं। समय के साथ इन दलों की कार्यप्रणाली में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ उभरी हैं जो लोकतंत्र की मूल भावना को क्षति पहुँचाती प्रतीत होती हैं। क्षेत्रीय दलों की राजनीति स्वभावतः क्षेत्र विशेष की समस्याओं, आकांक्षाओं और सांस्कृतिक पहचानों के इर्द–गिर्द घूमती है। हालांकि यह संघीय लोकतंत्र की एक आवश्यक कड़ी है, किंतु कई बार यह क्षेत्रीय स्वार्थ को राष्ट्रहित से ऊपर रखने की प्रवृत्ति को जन्म देती है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में शिवसेना

की 'मराठी मानुष' आधारित राजनीति, तमिलनाडु में डीएमके द्वारा हिंदी विरोध की तीव्रता, अथवा असम में बाहरी लोगों के विरोध में चलाए गए आंदोलन कभी–कभी राष्ट्र की एकता और अखंडता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। जब कोई दल केवल अपने क्षेत्र की मांगों को प्राथमिकता देते हुए केंद्र की नीतियों का विरोध करता है, तब यह राष्ट्रहित के प्रति असंवेदनशीलता का प्रतीक बनता है। यह प्रवृत्ति राष्ट्र की साझी नागरिकता की भावना को कमजोर करती है और क्षेत्रीयता को कट्टरता का रूप दे सकती है। ऐसे में क्षेत्रीय दलों को यह संतुलन बनाए रखना आवश्यक हो जाता है कि वे अपने क्षेत्रीय हितों की रक्षा करते हुए राष्ट्रीय एकता को भी सुदृढ़ करें।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों पर सबसे आम और तर्कपूर्ण आलोचना परिवारवाद की रही है। अनेक क्षेत्रीय दल एक परिवार या एक व्यक्ति के इर्द–गिर्द केंद्रित हो जाते हैं, जहाँ पार्टी का आंतरिक लोकतंत्र लगभग नगण्य होता है। समाजवादी पार्टी में मुलायम सिंह यादव के बाद उनके पुत्र अखिलेश यादव का उदय, राजद में लालू प्रसाद यादव के बाद तेजस्वी यादव का नेतृत्व, डीएमके में करुणानिधि से लेकर स्टालिन तक की सत्ता यात्रा, और शिवसेना में ठाकरे परिवार का वर्चस्वकृइन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि इन दलों में लोकतांत्रिक उत्तराधिकार की प्रक्रिया अपारदर्शी और सैद्धांतिक रूप से कमजोर रही है। इस प्रवृत्ति के चलते योग्यता आधारित नेतृत्व का विकास अवरुद्ध होता है, और पार्टी की नीतियाँ व निर्णय एक ही परिवार की मंशा पर निर्भर हो जाते हैं। इससे न केवल संगठनात्मक निष्क्रियता बढ़ती है, बल्कि लोकतंत्र के भीतर एक प्रकार का अधिनायकवाद भी पनपता है, जो संविधान में निहित राजनीतिक समता के मूलभूत सिद्धांत के विरुद्ध है।

क्षेत्रीय दलों पर एक अन्य गंभीर आरोप राजनीतिक अवसरवादिता का है। कई बार ये दल वैचारिक प्रतिबद्धताओं से अधिक सत्ता प्राप्ति को प्राथमिकता देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दल किसी भी गठबंधन का समर्थन इस आधार पर करते हैं कि उन्हें सत्ता में कितनी भागीदारी प्राप्त होगी, चाहे वह गठबंधन वैचारिक दृष्टि से विरोधी ही क्यों न हो। उदाहरणस्वरूप, बिहार में जदयू ने एक समय भाजपा के साथ गठबंधन किया, फिर उसे छोड़ा, फिर पुनः उससे हाथ मिला लिया। तृणमूल कांग्रेस ने कभी यूपीए का समर्थन किया तो कभी विरोध। इस प्रकार की राजनीति से न केवल सरकारों की स्थिरता पर प्रभाव पड़ता है, बल्कि जनता के मन में लोकतांत्रिक प्रणाली के प्रति विश्वास भी कमजोर होता है। इसके अतिरिक्त, कई क्षेत्रीय दल चुनाव से पूर्व जनहित के वादों के आधार पर गठबंधन करते हैं, किंतु सत्ता प्राप्ति के बाद उन वादों की अनदेखी करते हुए राजनीतिक लाभ के लिए समझौते करते हैं। यह स्थिति लोकतांत्रिक जवाबदेही की अवधारणा को कमजोर करती है।

## वर्तमान परिदृश्य और क्षेत्रीय दलों का भविष्य

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका समय के साथ एक गतिशील प्रक्रिया का हिस्सा रही है। 1990 के दशक से लेकर 2010 तक के दशक तक क्षेत्रीय दल केंद्र की सत्ता के लिए अपरिहार्य माने जाते थे, किंतु 2014 और उसके बाद के चुनावों ने राजनीतिक धारा में उल्लेखनीय परिवर्तन लाया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहाँ एक ओर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के नेतृत्व में राष्ट्रीय राजनीति का केंद्रीकरण हुआ है, वहीं दूसरी ओर क्षेत्रीय दलों ने भी नये रणनीतिक विकल्पों और राजनीतिक समझौतों की ओर रुख किया है। 2014 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ, जिसने गठबंधन युग के बाद एक बार फिर एकदलीय बहुमत की राजनीति को स्थापित किया। इससे पहले केंद्र में सत्ता प्राप्त करने के लिए क्षेत्रीय दलों का समर्थन आवश्यक माना जाता था, किंतु 2014 और 2019 के लोकसभा चुनावों में भाजपा के सशक्त बहुमत ने क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय राजनीति में इंतहंपदपदह चवूमत को सीमित कर दिया। हालाँकि इन चुनावों में भाजपा ने कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों को सीधी चुनौती दी, फिर भी अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों ने अपने गढ़ को सुरक्षित रखा। जैसे पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस, ओडिशा में बीजद, आंध्र प्रदेश में वाईएसआर कांग्रेस, और तमिलनाडु में डीएमके ने विधानसभा चुनावों में प्रभावशाली प्रदर्शन किया। इसका अर्थ यह निकाला जा सकता है कि यद्यपि केंद्र में राष्ट्रीय दल की पकड़ मजबूत हुई है, परंतु राज्यीय राजनीति में क्षेत्रीय दल अभी भी मजबूत स्तंभ हैं।

भाजपा और क्षेत्रीय दलों के संबंधों में टकराव और सामंजस्य की स्थिति एक साथ विद्यमान रही है। एक ओर भाजपा ने उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार जैसे राज्यों में क्षेत्रीय दलों से गठबंधन किया, वहीं दूसरी ओर बंगाल, तेलंगाना, ओडिशा, तमिलनाडु जैसे राज्यों में उसने सीधी टक्कर ली। टकराव की प्रवृत्ति वहाँ देखने को मिली जहाँ भाजपा ने अपने संगठनात्मक विस्तार के माध्यम से क्षेत्रीय दलों के प्रभाव को चुनौती दी। पश्चिम बंगाल में भाजपा बनाम तृणमूल संघर्ष इसका स्पष्ट उदाहरण है। वहीं, महाराष्ट्र में शिवसेना से हुआ विभाजन और

एनसीपी में हुए घटनाक्रम भाजपा की आक्रामक रणनीति को दर्शाते हैं। सामंजस्य की स्थिति उन राज्यों में देखी गई जहाँ भाजपा को क्षेत्रीय दलों की मदद से सत्ता प्राप्त करनी थी। बिहार में जदयू के साथ गठबंधन इसका उदाहरण है, हालाँकि यह गठबंधन भी समय–समय पर टूटता और जुड़ता रहा। स्पष्ट है कि भाजपा की राजनीति अब क्षेत्रीय दलों के साथ सैद्धांतिक से अधिक रणनीतिक संबंधों पर आधारित है।

राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों के पुनर्संयोजन की आवश्यकता और संभावनाएँ दोनों ही आज के समय में अत्यंत प्रासंगिक हो चुकी हैं। एक सशक्त राष्ट्रीय दल के समक्ष बिखरे हुए क्षेत्रीय दल तभी प्रभावशाली बन सकते हैं जब वे साझा मंच और न्यूनतम साझा कार्यक्रम के तहत एकजुट हों।

2023 में विपक्षी दलों द्वारा गठित 'इंडियाष गठबंधन' इसी पुनर्संयोजन का संकेत देता है। इस गठबंधन में कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस, डीएमके, आप, शिवसेना (उद्धव गुट), जेडीयू, आरजेडी, सपा आदि क्षेत्रीय व राष्ट्रीय दल शामिल हैं। इसका उद्देश्य भाजपा के बहुमत को चुनौती देना और साझा लोकतांत्रिक एजेंडे को प्रस्तुत करना है। हालांकि ऐसे गठबंधनों की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि क्षेत्रीय दल अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर सामूहिक नेतृत्व को स्वीकार करते हैं या नहीं। इसके अतिरिक्त, गठबंधन की स्थायित्व, नेतृत्व का संतुलन, वैचारिक सामंजस्य और सीटों का बंटवाराकृये सभी कारक निर्णायक होंगे।

## निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र की विशेषता उसकी विविधता में है, और इस विविधता को वास्तविक प्रतिनिधित्व देने का कार्य क्षेत्रीय दलों ने बखूबी किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर वर्तमान तक क्षेत्रीय दलों ने समय–समय पर भारतीय संघवाद को मजबूती देने, हाशिए पर खड़े वर्गों को आवाज़ देने, और लोकतंत्र को ज़मीनी स्तर पर लागू करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस अध्ययन के निष्कर्षस्वरूप यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय दल न केवल एक राजनीतिक विकल्प हैं, बल्कि वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया की समग्रता के लिए आवश्यक तत्व भी हैं। दलोकतंत्र केवल चुनावों या बहुमत तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह सहभागिता, प्रतिनिधित्व, बहुलता और उत्तरदायित्व की समग्र प्रणाली है। क्षेत्रीय दलों ने इन सभी पक्षों को सशक्त बनाने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। उन्होंने जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रीय अस्मिता, आर्थिक विषमता जैसे मुद्दों को मुख्यधारा की राजनीति में लाकर लोकतंत्र की अभिव्यक्ति को व्यापक बनाया। जहाँ राष्ट्रीय दल कभी–कभी एकरूपता और केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देते हैं, वहीं क्षेत्रीय दल विविधताओं को स्थान देते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि स्थानीय जनसमस्याएँ, सांस्कृतिक चिंताएँ और सामाजिक संरचनाएँ लोकतांत्रिक विमर्श का हिस्सा बन सकें। उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु, ओडिशा, पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में क्षेत्रीय दलों ने न केवल सत्ता प्राप्त की है, बल्कि उन्होंने शासन प्रणाली में सामाजिक न्याय, कल्याणकारी योजनाओं और स्थानीय आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी है। अतः यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय दल अपनी आंतरिक लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करें। पदाधिकारी चयन, उम्मीदवारों का नामांकन, और नीति निर्धारण जैसी प्रक्रियाओं में पारदर्शिता और लोकतांत्रिक सहभागिता सुनिश्चित की जाए। चुनाव आयोग को दलों की आंतरिक संरचना की निगरानी हेतु अधिक प्रभावी अधिकार दिए जाने चाहिए, जिससे पार्टियों के पंजीकरण और मान्यता को आंतरिक लोकतांत्रिक मूल्यों से जोड़ा जा सके। इसके अतिरिक्त, राजनीतिक दलों की आय और व्यय की सार्वजनिक जानकारी, समय–समय पर ऑडिट रिपोर्ट की अनिवार्यता, और प्रत्याशियों की आपराधिक पृष्ठभूमि पर पारदर्शिता भी आवश्यक है। इन सुधारों से न केवल क्षेत्रीय दलों की छवि सुधरेगी, बल्कि लोकतंत्र में जनता का विश्वास भी सुदृढ़ होगा। इस प्रकार निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रीय दल आवश्यक, प्रभावशाली और अपरिहार्य घटक हैं। यदि वे सुधारों की ओर अग्रसर हों, तो वे न केवल सत्ता की राजनीति में बल्कि लोकतांत्रिक सशक्तिकरण में भी अग्रणी भूमिका निभा सकते हैं।

## संदर्भ सूची

1. सिंहल, सुरेश चन्द्र. (2005 ). तुलनात्मक राजनीति. लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. चक्रवर्ती, विद्युत. (2014). कोलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
3. चौहान, रजिन्दर सिंह, अरोरा, दिनेश, – वासुदेव, शैलजा. (2011). कोलीशन गवर्नमेंटरू प्रॉब्लम्स एंड प्रॉस्पेक्ट्स. डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
4. गाबा, ओ. पी. (2001). भारतीय राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

5. लक्ष्मीकांत, एम. (2014). भारतीय राजव्यवस्था. टी.एम.एच. प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. शर्मा, पी. डी. (2014). लोकतांत्रिक भारत में लोक प्रशासन. साहित्य घर प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. जौहरी, जे. सी. (2009). तुलनात्मक राजनीतिविज्ञान. स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
8. फाड़िया, बी. एल. (2008). राजनीति विज्ञान. साहित्य भवन पब्लिशिंग, आगरा।
9. सिंह, होशियार सिंह, माथुर, पी. सी., – सिंह, पंकज. (2007). कोलीशन गवर्नमेंट एंड गुड गवर्नेंस. अलख पब्लिशर्स, जयपुर।
10. गहलोत, एन. एस. (2002). न्यू चौलेंजेज टू इंडियन पॉलिटिक्स. डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
11. शर्मा, सुमन. (1995). स्टेट बाउंड्री चेंजेज इन इंडियारू कॉन्स्टीट्यूशनल प्रोविज़न एंड कॉन्सिक्वेन्सेज. डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
12. तेजिन्दर. (2008). रीजनल पार्टीज इन नेशनल पॉलिटिक्स (पृ. 249). के. के. पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली।

## Cite this Article-

*'संजय कुमार', 'भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रीय दलों की भूमिकाः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन',* *Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:04, April 2025.*

**Journal URL-** https://www.researchvidyapith.com/

**DOI-** 10.70650/rvimj.2025v2i40013

**Published Date-** 16 April 2025